
इकाई 13 काव्य वाचन एवं विश्लेषण : केदारनाथ अग्रवाल

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

13.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

13.4 उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- केदारनाथ अग्रवाल की चार कविताओं की विस्तृत व्याख्या समझ सकेंगी/सकेंगे;
 - केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं की व्याख्या की दिशाओं को जान सकेंगी/सकेंगे;
 - इन कविताओं के माध्यम से प्रगतिवाद की विशिष्टताओं को समझ सकेंगी/सकेंगे;
 - केदारनाथ अग्रवाल की काव्य-भाषा को समझने का प्रयास कर सकेंगे/सकेंगी;
 - केदारनाथ अग्रवाल की शब्द-योजना और शब्दावली को जान सकेंगी/सकेंगे।
-

13.1 प्रस्तावना

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 1911 में बाँदा जिले के कमासिन नामक गाँव में हुआ था इनकी पढ़ाई-लिखाई इलाहाबाद और कानपुर में हुई थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के बाद इन्होंने एल.एल.बी. की पढ़ाई डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर से की। वकालत को उन्होंने अपना पेशा और जीविका का साधन बनाया। उनकी मृत्यु 22 जून, 2000 को हुई।

केदारनाथ अग्रवाल की पहचान प्रगतिवादी कवि के रूप में रही है। ग्रामीण जीवन को व्यक्त करने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। खेती-बारी, गाँव की प्रकृति, बाँदा के आस-पास का जन-जीवन, केन नदी को आधार बनाकर उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं।

काव्य-संग्रह

युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965), आग का आईना (1970), गुलमेंहदी (1978), पंख और पतवार (1980), हे मेरी तुम (1981), मार प्यार की थापें (1981), बम्बई का रक्त-स्नान (1981), अपूर्वा (1984), बोल बोल अबोल (1985), आत्म-गंध (1988), अनहारी हरियाली (1990), खुर्लीं आँखें खुले डैने (1993), पुष्प दीप (1994) अनुवाद -देश-देश की कविताएँ (1970)

काव्य-संकलन

आधुनिक कवि - 16 (1978), कहें केदार खरी-खरी (1983, सं.- अशोक त्रिपाठी), जमुन जल तुम (1984, सं.- अशोक त्रिपाठी), जो शिलाएँ तोड़ते हैं (1986, सं.- अशोक त्रिपाठी), वसन्त में प्रसन्न

हुई पृथ्वी (1996, सं.- अशोक त्रिपाठी), कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह (1997, सं.- अशोक त्रिपाठी),

निबन्ध-संग्रह

समय-समय पर (1970), विचार-बोध (1980), विवेक-विवेचन (1981)

उपन्यास – पतिया (1985)

यात्रा-वृत्तान्त – बस्ती खिले गुलाबों की (1975)

पत्र-साहित्य – मित्र-संवाद (1991, सं- रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी)

13.2 चयनित कविताओं का पाठ और विश्लेषण

एक

माँझी न बजाओ बंशी

माँझी ! न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल-पल डोलता
माँझी! न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता है जैसे तृन टूटता
तृन का निवास जैसे बन-बन टूटता
माँझी! न बजाओ बंशी मेरा तन झूमता
मेरा तन झूमता है तेरा तन झूमता
मेरा तन तेरा तन एक बन झूमता

(1946, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')

सन्दर्भ और प्रसंग

'माँझी न बजाओ बंशी...' शीर्षक कविता 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) काव्य-संग्रह में संगृहीत है। यह उनकी प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। कवि का विचार है कि कला माध्यमों में इतनी क्षमता होती है कि वह दूसरों को आत्मसात कर लेती है। माँझी की वंशी की आवाज के साथ कवि का आत्मसातीकरण इस कविता की विशेषता है।

कठिन शब्द

माँझी- नाव चलानेवाली एक जाति, **बंशी**-बाँसुरी, **प्रन**- प्रतिज्ञा, कसम, **तृन**- घास-फूस, **तृन का निवास**-घास-फूस से बना घर

व्याख्या

इस कविता में केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं कि माँझी, तुम जब वंशी बजाते हो तो मेरा मन डोलने लगता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम वंशी न बजाओ!

तुम जब वंशी बजाते हो तो उसका प्रभाव सबसे पहले मेरे मन पर पड़ता है। तुम्हारी धुन पर मेरा मन धीरे-धीरे डोलने लगता है। मेरा मन वैसे ही डोलता है जैसे गहरे पानी में हलचल होती है। हिलता हुआ पानी इतने बड़े जहाज को भी डोलने को विवश कर देता है। इस दोलन में जहाज पल-पल झूमता ही जाता है।

माँझी, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी वंशी की आवाज से अप्रभावित रहूँ। तुम लोक के कलाकार हो और गवई शैली की कला तुम्हारी पहचान है। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी कला से एकाकार हो जाऊँ! मगर क्या करूँ, तुम जब वंशी बजाते हो तो मेरी प्रतिज्ञा टूटने लगती है! मेरी प्रतिज्ञा उतनी ही आसानी से टूटती है जैसे घास टूट जाती है या घास-फूस से बनी हुई झोपड़ी टूट जाती है। बार-बार झोपड़ी बनाने की तरह मैं भी बार-बार कसम खाता हूँ, मगर मेरी कसम झोपड़ी की तरह बार-बार टूट जाती है।

माँझी, तुम वंशी मत बजाओ! मेरा मन तो डोल ही रहा था, अब तन भी डोल रहा है। मन का डोलना शायद कोई देख न पाए मगर तन का डोलना तो सबके द्वारा देख लिया जाता है। मैं चाहता नहीं कि तुम्हारी वंशी की धुन के साथ मेरी एकात्मकता को लोग चिह्नित करें! लेकिन क्या किया जाए! अब तो मेरा शरीर वैसे ही झूम रहा है, जैसे तुम्हारा तन झूम रहा है। थोड़ी ही देर में मेरा और तेरा तन मानो एकाकार होकर झूमने लगा है।

काव्य सौष्ठव

- यह कविता लोक कला की शक्ति को प्रकट करती है।
- सभ्य समाज लोक कला से दूरी रखना चाहता है, मगर उसकी शक्ति से अप्रभावित नहीं रह सकता।
- आज भी लोक धुन पर आधारित गीतों को व्यापक लोकप्रियता मिलती है। कई बार तो शहरी समाज जानता भी नहीं है कि वह जिस धुन को पसंद कर रहा है उसके मूल में कोई लोक धुन है।
- 25, 24 और 21 मात्राओं की तीन-तीन पंक्तियों के क्रम से इस कविता का निर्माण हुआ है। पूरी कविता में तीन-तीन पंक्तियों के कुल तीन चरण हैं।

विशेष

केदारनाथ अग्रवाल ने लोक जीवन के संगीत की शक्ति को मनोहर रूप में व्यक्त किया है। उनका ख्याल है कि प्रकृति के करीब रहने वाला जन-जीवन अपने स्वभाव से इतना आत्मीय होता है कि वह दूसरों के मन तक पहुँचने की अपार क्षमता रखता है।

दो

घन-जन

घन गरजे जन गरजे

बन्दी सागर को लख कातर

एक रोष से

घन गरजे जन गरजे

क्षत-विक्षत लख हिमगिरि अन्तर

एक रोष से

घन गरजे जन गरजे

क्षिति की छाती को लख जर्जर

एक शोध से

घन गरजे जन गरजे

देख नाश का ताण्डव बर्बर

एक बोध से

घन गरजे जन गरजे

(1946, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')

सन्दर्भ और प्रसंग

'घन गरजे जन गरजे' शीर्षक कविता 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) काव्य-संग्रह में संगृहीत है। केदारनाथ अग्रवाल का विचार है कि बादलों की गर्जना में मुझे जनता की हुंकार सुनाई पड़ती है। बादल मानो विशाल जनता के प्रतीक हैं। पराधीनता के किसी भी रूप को जनता स्वीकार करना नहीं चाहती है। वह अपना रोष प्रकट करती है।

व्याख्या

केदारनाथ अग्रवाल ने इस कविता में बादलों को जनता का प्रतीक बनाया है। 'सागर', 'हिमगिरि' और 'क्षिति' – इन तीन प्रतीकों के माध्यम से कवि ने जनता की दुर्दशा को चित्रित किया है। वे कहते हैं कि बादलों की गर्जना में मुझे जनता की क्रांतिकारी ललकार सुनाई पड़ती है। बादल देखते हैं कि विराट समुद्र अपनी सीमाओं में कैद है, वह बेबस है। इस विराट की पराधीनता बादलों में रोष उत्पन्न कर देती है और वे मानो समुद्र की मुक्ति के लिए गरज उठते हैं।

संसार की सबसे बड़ी और ऊँची पर्वत श्रृंखला हिमालय का हृदय मानो आज बुरी तरह घायल है। यह देखकर बादलों में रोष भर जाता है और वे गरज उठते हैं। इसी तरह विराट धरती की छाती आज जर्जर अवस्था को प्राप्त कर गयी है। धरती की इस हालत को सर्वत्र देखकर बादल गरज उठे हैं। चारों तरफ विनाश का अकरुण नृत्य चल रहा है। इन बातों को समझते हुए बादल गरज उठे हैं।

कठिन शब्द

घन- बादल, जन – सामान्य जनता, बन्दी सागर-मानो समुद्र भी बँधा हुआ हो, लख- देख कर, कातर- बेबस, परेशान रोष- गुस्सा, क्षत-विक्षत- घायल, बुरी तरह चोटिल, हिमगिरि अन्तर – हिमालय का मन, क्षिति की छाती- धरती, जर्जर- कमजोर और टूटा-फूटा, शोध- खोज से प्राप्त निष्कर्ष, ताण्डव – नृत्य का विध्वंसक रूप, बर्बर- निर्दय, बोध- समझ

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति के उपादानों के माध्यम से जनता की दुर्दशा का चित्रण किया है। उनका ख्याल है कि इन बातों को जनता खूब समझती है। वह रोष में है, उसे इन बर्बरताओं का बोध है और वह अपना विरोध मुखरित होकर प्रकट करती रहती है।

यह कविता प्रकृति चित्रण के माध्यम से जन-सरोकारों को व्यक्त कर रही है।

काव्य सौष्टव

- 'घन' और 'जन' का तालमेल सुंदर बन पड़ा है।
- जनता की दुर्दशा प्रकृति की तरह व्यापक रूप से फैली है। उसका निदान जरूरी है, अन्यथा विद्रोह अवश्यम्भावी है।
- 16, 08 और 12 मात्राओं की तीन पंक्तियों से इस कविता का निर्माण हुआ है। तीन-तीन पंक्तियों के चार चरणों से यह कविता पूरी हुई है।

विशेष

जनता विराट है। उसे बाँधने की कोशिश असफल हो जाती है। जनता का क्रोध सब कुछ बदल सकता है।

तीन

चंद्रगहना से लौटती बेर
देख आया चंद्रगहना।
देखता हूँ दृश्य अब मैं
मेंड़ पर इस खेत की बैठा अकेला।

एक बीते के बराबर
यह हरा टिंगना चना,
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का,
सज कर खड़ा है।

पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है लचीली,
नील फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर
कह रही है, 'जो छुए यह

दूँ हृदय का दान उसको।'

और सरसों की न पूछो —
हो गयी सबसे सयानी,
हाथ पीले कर लिए हैं,
ब्याह—मंडप में पधारीय
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे।

देखता हूँ मैं : स्वयंवर हो रहा है,
प्रकृति का अनुराग—अंचल हिल रहा है
इस विजन में
दूर व्यापारिक नगर से
प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है।

और पैरों के तले है एक पोखर,
उठ रहीं इसमें लहरियाँ,
नील तल में जो उगी है घास भूरी
ले रही वह भी लहरियाँ।

एक चाँदी का बड़ा—सा गोल खंभा
आँख को है चकमकाता।

हैं कई पत्थर किनारे
पी रहे चुपचाप पानी,
प्यास जाने कब बुझेगी!

चुप खड़ा बगुला डुबाये टाँग जल में,
देखते ही मीन चंचल

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ध्यान निद्रा त्यागता है,
चट दबा कर चोंच में
नीचे गले के डालता है!

एक काले माथ वाली चतुर चिड़िया
श्वेत पंखों के झपाटे मार फौरन
टूट पड़ती है भरे जल के हृदय पर,
एक उजली चटुल मछली
चोंच पीली में दबा कर
दूर उड़ती है गगन में!

औं यहीं से –
भूमि ऊँची है जहाँ से –
रेल की पटरी गयी है।
ट्रेन का टाइम नहीं है।

मैं यहाँ स्वच्छन्द हूँ,
जाना नहीं है।

चित्रकूट की अनगढ़ चौड़ी
कम ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ
दूर दिशाओं तक फैली हैं।

बाँझ भूमि पर
इधर-उधर रीवा के पेड़
काँटेदार कुरूप खड़े हैं।

सुन पड़ता है
मीठा-मीठा रस टपकाता

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सुग्गे का स्वर
 टें टें टेंय
 सुन पड़ता है
 वनस्थली का हृदय चीरता,
 उठता-गिरता
 सारस का स्वर
 टिरटों टिरटोंय
 मन होता है -
 उड़ जाऊँ मैं
 पर फैलाये सारस के संग
 जहाँ जुगुल जोड़ी रहती है
 हरे खेत में
 सच्ची प्रेम कहानी सुन लूँ
 चुप्पे चुप्पे।

(1946, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')

सन्दर्भ और प्रसंग

'चंद्रगहना से लौटती बेर' शीर्षक कविता 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1965) काव्य-संग्रह में संगृहीत है। यह केदारनाथ अग्रवाल की एक प्रसिद्ध कविता है। चित्रकूट क्षेत्र में चंद्रगहना एक गाँव है। इस गाँव के आस-पास की प्रकृति के बारे में इस कविता में बताया गया है। यह चित्रण ग्रामीण के साथ-साथ किसानों की भी है। मैदान की किसानों-प्रकृति पर कविता लिखने में केदारनाथ अग्रवाल को पर्याप्त सफलता मिली है।

व्याख्या

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रस्तुत कविता में, चंद्रगहना नामक गाँव से लौटते हुए, प्रकृति के बारे में कुछ बातें कही हैं। इस यात्रा में प्रकृति के कुछ रूप कवि को दिखाई पड़े, जिनका जिक्र इस कविता में हुआ है। कवि का पर्यवेक्षण और आत्मीय प्रस्तुति इस कविता की विशेषता है।

कठिन शब्द

चंद्रगहना- एक गाँव का नाम, **लौटती बेर**- लौटते समय, **मेड़** - खेत का ऊँचा किनारा, **एक बीते**- एक बित्ता, एक बालिशत, **ठिंगना**- बौना, जिसकी ऊँचाई कम हो, **मुरैठा**- मुरैठा, पगड़ी, **अलसी**- तीसी, तेलहन की एक फसल, **हठीली**-जिद्दी, **सयानी**- ब्याह के लायक हो गयी है, **हाथ पीले**- शादी की तैयारी में हल्दी-उबटन से आई गुराई, शादी करना, **फाग** - होली के गीत, **फागुन**-फाल्गुन का महीना, वसंत ऋतु का महीना **स्वयंवर**- विवाह की एक पद्धति जिसमें दुल्हन अपनी इच्छा से दूल्हे को चुनती है, **अनुराग-अंचल** - प्रेम से परिपूर्ण आंचल, **विजन** - एकांत जगह, **पोखर**- पोखरा, तालाब, **नील तल** - तालाब की गहराई में तल नीले रंग का नजर आ रहा है, **घास भूरी**- पानी के भीतर जमने वाला पौधा, **माथ**- माथा, सिर, **चटुल** - चंचल, **स्वच्छन्द**- जिस पर कोई बंधन न हो, **बाँझ भूमि**- बंजर जमीन, **रीवा के पेड़** - एक काँटेदार पेड़, **वनस्थली**- जंगली और वीरान जगह

कवि चंद्रगहना को देख आया है। वह खेत की मेड़ पर बैठा है और आस-पास के दृश्यों को देख रहा है। कवि ने देखा कि खेत में चने की फसल लगी है। उसका हरा पौधा लगभग एक बित्ते के बराबर ऊँचा हो गया है, मगर व्यक्तित्व से टिगना मालूम पड़ता है। उसमें निकला हुआ गुलाबी फूल सिर पर बँधी पगड़ी की तरह मालूम पड़ता है। सजा-धजा चना मानो किसी उत्सव की तैयारी कर रहा है, हो सकता है कि वह अपनी शादी की तैयारी कर रहा हो!

वहीं पास में ही सट कर तीसी के पौधे उगे हुए हैं। मगर वह तो चने से लंबी है, देह से दुबली भी है, उसकी कमर में बहुत लचक भी है। उसने अपने नीले फूल को माथे पर चढ़ा-सजा रखा है और शर्त रख दी है कि जो इस फूल को छू देगा उसे मैं अपने हृदय का दान दे दूँगी। मतलब उससे शादी कर लूँगी। लगता है कि उसने चने को ध्यान में रखकर यह कठिन शर्त रख दी है! बेचारा एक बित्ते का टिगना चना उस लंबी छरहरी अलसी के सिर पर सजे नीले फूल को कैसे छू पाएगा! अलसी ने चने को छेड़ने के लिए खूब शरारत रची है!

खेतों में फैली सरसों की फसल क्या खूब लग रही है! ऐसा लगता है मानो सरसों अब ब्याह के लायक सयानी हो गयी है। उसके पीले फूल यूँ लग रहे हैं जैसे, शादी की तैयारी के लिए हल्दी-उबटन से हाथ पीले हो गए हैं। वह ब्याह के लिए मानो मण्डप में आ चुकी है। यूँ लगता है कि फाल्गुन का महीना अपनी फगुनाहट की हवा के जरिए ब्याह और होली के गीत गा रहा है!

कवि को लग रहा है कि प्रकृति में स्वयंवर का कार्यक्रम चल रहा है। इस खुशी में प्रकृति का आँचल मारे स्नेह के डोल रहा है। वैसे तो यह जगह निर्जन है, मगर धंधे-व्यापार वाले शहर से दूर रहने के कारण यहाँ प्रेम का उपजाऊ वातावरण मौजूद है। अर्थात् सरल जीवन से उत्पन्न प्रेम की सम्भावनाएँ यहाँ उपलब्ध हैं।

इसके बाद कवि ने एक बड़े तालाब की चर्चा की है। कवि जहाँ बैठा है, वहाँ से उसके पैरों की तरफ एक बड़ा पोखर है। हवा के कारण उस पोखर में लहरें दिखाई पड़ रही हैं। पोखर इतना गहरा और साफ-सुथरा है कि उसकी तलहटी नीली मालूम पड़ रही है। उस तलहटी में भूरी घास है और वह भी लहराती हुई दिखाई पड़ रही है। सूरज अपनी चमक के साथ पोखर के पानी में चाँदी के एक बड़े गोल खम्भे की तरह प्रतिबिंबित हो रहा है। पोखर के किनारे कई पत्थर हैं। कवि कल्पना करता है कि ये पत्थर मानो चुपचाप पानी पी रहे हैं। मगर ये तो न जाने किस जमाने से पानी पी रहे हैं! न जाने इनकी प्यास कब बुझेगी?

तालाब में एक बगुला चुपचाप खड़ा है। बिल्कुल ध्यान लगाए – 'वकोध्यान'। तैरती हुई एक मछली को देखकर वह अपनी ध्यान-निद्रा के अभिनय को त्यागता है और चोंच में फुर्ती के साथ दबाकर गले में डाल लेता है। मछली बगुले के पेट में चली गई। एक दूसरी चतुर चिड़िया है जिसका माथा काला है। वह सफेद पंखोंवाली है। वह अचानक पानी पर झपट्टा मारती है और एक चंचल मछली को अपनी पीली चोंच में दबाकर दूर आकाश में उड़ जाती है।

पोखर के इन दृश्यों को दिखाने के बाद कवि बताता है कि पोखर के पास से ही जमीन क्रमशः ऊँची होने लगी है। उस ऊँचाई से रेल की पटरी गुजरी है। मगर अभी किसी ट्रेन के जाने का समय नहीं है। कवि को महसूस हो रहा है कि इस माहौल में वह पूरी तरह आजाद है। उसे कहीं आने-जाने का भी तनाव नहीं है। वह चारों तरफ नजर उठाकर देखता है कि चित्रकूट की पहाड़ियाँ दूर-दूर तक फैली हुई हैं। ये पहाड़ियाँ ज्यादा ऊँची नहीं हैं। ये आकार-प्रकार में भी सुगढ़ नहीं हैं। वहाँ की भूमि भी बंजर है। इधर-उधर रींवा के काँटेदार और कुरूप पेड़ दिखाई पड़ रहे हैं।

मगर इस पथरीली बंजर जमीन के वातावरण में भी तोते की आवाज सुनाई पड़ती है। सुगगे जब टें टें बोलते हैं तो लगता है कि कानों में मीठा-मीठा रस टपक रहा हो! इस वन-भूमि के सन्नाटे को

चीरता हुआ सारस पक्षी का स्वर टिरटों टिरटों सुनाई पड़ता है। कवि का मन होता है कि पंख फैलाए उस सारस पक्षी के साथ वह उड़ जाए और वहाँ पहुँच जाए जहाँ वह अपनी जोड़ी के साथ रहता है। उसकी इच्छा है कि हरे-भरे खेतों में रहनेवाली इस जोड़ी की सच्ची प्रेम कहानी वह चुपचाप सुन ले और आनन्दित होता रहे।

काव्य सौष्ठव

- यह कविता चित्रकूट के निर्जन ग्रामीण इलाके की प्रकृति का चित्रण करती है। कवि ने पूरी आत्मीयता से प्रकृति के बीच घटित हो रही गतिविधियों को दिखाया है। यहाँ प्रकृति का मुख्य हिस्सा किसानों से जुड़ा है। फसलों का मानवीकरण करते हुए जो कुछ प्रस्तुत किया गया है, वह बहुत सुंदर बन पड़ा है।
- खेत, तालाब और पहाड़ी के बीच फसल, मछली और पक्षी को रखकर जो परिवेश रचा गया है, उसमें प्रगतिवाद की प्रेरणा काम कर रही है। कवि ने गैर-रोमैंटिक वातावरण के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया है।
- पूरी कविता में मात्रिक छंद का प्रवाह मौजूद है। छोटी-बड़ी पंक्तियों के सहारे कोशिश की गई है कि मात्रिक छन्द के प्रवाह में पूरी कविता लगभग कथा की तरह सुनाई जा सके।

विशेष

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रगतिवादी दृष्टि को इस कविता में उँचाई प्रदान किया है। सैद्धांतिक शब्दावली से बचते हुए उन्होंने गाँवों के प्रति ध्यान खींचने का काम किया है। यह कविता गाँव के वातावरण को सजीव और आकर्षक तरीके से पेश करनेवाली शुरुआती कविताओं में महत्वपूर्ण है।

चार

धूप

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने
मैके में आयी बेटि की तरह मगन है
फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं
भैया की बाँहों से छूटी भौजाई-सी
लहँगे को लहराती लचती हवा चली है
सारंगी बजती है खेतों की गोदी में
दल के दल पक्षी उड़ते हैं मीठे स्वर के
अनावरण यह प्राकृत छवि की अमर भारती
रंग-बिरंगी पंखुरियों की खोल चेतना सौरभ से मँह-मँह महकाती है दिगंत को
मानव मन को भर देती है दिव्य दीप्ति से
शिव के नंदी-सा नदियों में पानी पीता

निर्मल नभ अवनी के ऊपर बिसुध खड़ा है
काल काग की तरह ढूँठ पर गुमसुम बैठा
सोयी आँखों देख रहा है दिवास्वप्न को।

(17.01.1959, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं')

सन्दर्भ और प्रसंग

'धूप' शीर्षक कविता में गाँव की कुछ छवियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। इसमें धूप का मानवीकरण हुआ है। उसे मनुष्य की तरह की गतिविधियों से जोड़कर चित्रित किया गया है। धूप के अलावा हवा आदि प्राकृतिक उपादानों को भी मनुष्य की तरह क्रियाशील दिखाया गया है।

व्याख्या

प्रस्तुत कविता में प्रगतिवाद के प्रतिनिधि कवि केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं कि धूप चमक रही है। ऐसा लगता है कि चाँदी की साड़ी पहनकर कोई बेटा अपने मायके में आयी है। मायके आयी हुई बेटा ससुराल की औपचारिकताओं से मुक्त होती है। वह मगन भी होती है और बेपरवाह भी। खिली हुई धूप, फूलों से लदी सरसों से ऐसे लिपट गयी है, जैसे दो हम-उम्र पुरानी सखियाँ बहुत दिनों के बाद मिलने पर छाती से लिपट जाती हैं।

बहुत प्यारी हवा चल रही है। कवि की कल्पना जगती है कि यह तो भौजाई के लहराते हुए लँहगे से चली हवा की तरह प्यारी मालूम पड़ रही है। भैया ने घर-भर की परवाह नहीं की और भौजाई को बाँहों में भर लिया था। भाभी लाज के मारे बाँहों से अपने को छुड़ा कर जब भागी तो लँहगे के लहराने से श्रृंगार में डूबी ऐसी ही हवा चली थी। कवि ने देवर-भाव से हवा पर टिप्पणी की है।

खेतों में न जाने कितने सुरीले पंछी उड़-बैठ रहे हैं। ऐसा लगता है कि इन खेतों की गोदी में ये पंछी सारंगी की तरह हैं और बज रहे हैं। प्रकृति की यह सुंदरता बिल्कुल खुले रूप में कवि के सामने है। उसे लगता है कि प्रकृति का यह खुला रूप ही विद्या की देवी का असली रूप है। इस छवि को ही 'अमर भारती' मान लेना चाहिए। यह अमर भारती फूलों की रंग-बिरंगी पंखुरियों को खोल कर अनंत सौरभ फैला देती है। वह सभी दिशाओं को सुगंध से भर देती है। वह मनुष्य के मन को अलौकिक चमक से भर देती है। इन सब के बीच रहनेवाला मनुष्य मानो अलौकिक सुख को प्राप्त करता है। कवि का संकेत है कि लोक की सुंदरता में ही अलौकिक का अस्तित्व है। अलौकिक की कोई दूसरी दुनिया नहीं है।

कविता के अगले चरण में कवि बताता है कि स्वच्छ आकाश धरती के ऊपर बेसुध झुका हुआ मालूम पड़ रहा है। ऐसा लगता है कि भगवान् शंकर का नंदी बैल झुककर नदियों से पानी पी रहा

हो! इन सुंदर दृश्यों को देखकर मानो समय भी स्तब्ध रह गया है। ऐसा लगता है कि सूखे हुए पेड़ पर बैठा हुआ कौआ काल (समय) है और वह हतप्रभ होकर खोयी-खोयी आँखों से इन दृश्यों को देख रहा है। उसे लग रहा है कि कहीं मैं जागते हुए सपने तो नहीं देख रहा?

कवि का ख्याल है कि गाँव की प्रकृति अलौकिक सुंदरता से सम्पन्न है। एकबारगी इस सुंदरता को देखकर विश्वास नहीं होता कि यह सब सच है!

कठिन शब्द

फूली सरसों – फूलों से युक्त सरसों की फसल, **हमजोली सखियाँ** – एक उम्र की दोस्त **भौजाई** – भाभी, **लचती** – लचकती हुई, **प्राकृत छवि** – प्राकृतिक सुंदरता, **अमर भारती** – प्रकृति मानो सरस्वती का शाश्वत रूप है, **सौरभ** – सुगंध, **दिगंत** – क्षितिज, **दिव्य दीप्ति** – अलौकिक चमक, **नन्दी** – भगवान् शंकर के नन्दी बैल की तरह, **अवनी** – धरती, **बिसुध** – बेसुध, होश खोकर, **काल** – समय **दिवास्वप्न** – दिन में दिखनेवाला सपना, अत्यधिक काल्पनिक

काव्य सौष्ठव

- यह कविता गाँव की प्रकृति के कुछ दृश्यों को प्रस्तुत करती है।
- कवि का ख्याल है कि गाँव का परिवेश इतना सुंदर है कि उसे अलौकिक कहा जा सकता है।
- पूरी कविता में 24 – 24 मात्राओं की पंक्तियों का उपयोग हुआ है।

विशेष

चमकती हुई धूप में गाँव की प्रकृति के कुछ दृश्य रखकर कवि ने इस बात पर जोर दिया है कि हमारे देश के गाँव सुंदरता के प्रतीक हैं। गाँवों के प्रति झुकाव को बढ़ाने की कोशिश प्रगतिवाद की एक पहचान रही है।

बोध प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दें।

1. 'माँझी न बजाओ बंशी' कविता का मूल भाव क्या है ?
.....
.....
.....
2. 'घन गरजे जन गरजे' कविता में किस तरह की चेतना है?
.....
.....
.....
3. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' कविता में कुछ फसलों का किस रूप में जिक्र है?
.....
.....
.....
4. 'धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने' में कवि ने किसका बिम्ब निर्मित किया है?
.....
.....
.....

बोध प्रश्न-2

- i. 'माँझी न बजाओ बंशी' शीर्षक कविता किस पुस्तक में है?
क) युग की गंगा ख) फूल नहीं रंग बोलते हैं ग) लोक और आलोक
घ) पंख और पतवार
- ii. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' किस काव्य-संग्रह की कविता है?

- क) फूल नहीं रंग बोलते हैं ख) पंख और पतवार ग) हे मेरी तुम
घ) युग की गंगा
- iii. केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति-चित्रण में सबसे ज्यादा किस पद्धति का उपयोग किया है ?
क) अप्रस्तुत ख) मानवीकरण ग) रूपक घ) अन्योक्ति
- iv. 'चटुल' शब्द का क्या अर्थ है?
क) बड़ी ख) शिथिल ग) छोटी घ) चंचल
- v. 'टिरटों टिरटों' स्वर निकालनेवाला पक्षी कौन है?
क) सुग्गा ख) बगुला ग) सारस घ) काले माथे वाली चिड़िया
- vi. 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' काव्य-संग्रह का प्रकाशन कब हुआ था?
क) 1947 ख) 1965 ग) 1957 घ) 1970
- vii. 'क्षिति' शब्द का क्या अर्थ है ?
क) क्षितिज ख) गगन ग) दिशा घ) धरती
- viii. 'बाँधे मुरैठा शीश पर' किसके लिए कहा गया है?
क) टिंगना चना ख) अलसी ग) सरसों घ) फागुन
- ix. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' शीर्षक कविता में किस क्षेत्र की प्रकृति का चित्रण है?
क) गढ़वाल ख) छोटानागपुर ग) सतपुड़ा घ) चित्रकूट
- x. 'धूप' शीर्षक कविता में कितनी मात्रा की पंक्तियों का उपयोग हुआ है?
क) 12 ख) 16 ग) 24 घ) 28
- xi. केदारनाथ अग्रवाल का जन्म कब हुआ था?
क) 1909 ख) 1910 ग) 1911 घ) 1912
- xii. केदारनाथ अग्रवाल की मृत्यु कब हुई थी?
क) 1998 ख) 1985 ग) 2002 घ) 2000
- xiii. केदारनाथ अग्रवाल मूलतः किस धारा के कवि माने जाते हैं?
क) छायावादी ख) प्रयोगवादी ग) हालावादी घ) प्रगतिवादी
- xiv. निम्नलिखित में से कौन-सी पुस्तक केदारनाथ अग्रवाल की नहीं है ?
क) नींद के बादल ख) हे मेरी तुम ग) युगधारा घ) लोक और आलोक

13.3 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. 'माँझी न बजाओ बंशी' कविता में कवि का मूल भाव यह है कि लोक कलाओं में गहरी आत्मीयता होती है। उसमें आकर्षित करने की अद्भुत ताकत होती है। उससे जुड़ने की कोशिश मात्र से हम उसमें डूबने लगते हैं। इसी बात को कहने के लिए कवि ने माँझी का

यह रूपक गढ़ा है। वह कहता है कि मैं माँझी की वंशी की आवाज से अनासक्त-अप्रभावित रहना चाहता हूँ। मगर ऐसा हो नहीं पाता। वंशी ज्यों-ज्यों बजती है, मैं उसमें डूबता जाता हूँ।

2. 'घन गरजे जन गरजे' कविता में प्रगतिवादी चेतना काम कर रही है। कवि बादलों की गर्जना मंक जनता के आक्रोश की ध्वनि को आरोपित कर रहा है। वह दिखलाना चाहता है कि अन्याय के खिलाफ व्यापक विद्रोह की सम्भावना बनी रहती है। वह बताना चाहता है कि शोषकों को किसी भ्रम में नहीं रहना चाहिए, उनका विरोध अवश्य होगा।
3. 'चंद्रगहना से लौटती बेर' कविता में चना, अलसी और सरसों का जिक्र है। एक बित्ते के बराबर का चना अपने सिर पर गुलाबी फूल के साथ सजा है। ऐसा लगता है कि वह गुलाबी रंग की पगड़ी बाँध कर शादी के लिए तैयार है। वहीं सट कर अलसी खड़ी है। वह देह से पतली और कमर से लचीली है। उसने नीले फूल को अपने सिर पर सजा रखा है। और उसने शर्त रख दी है कि जो इस फूल को छू देगा मैं उससे शादी कर लूँगी। सरसों तो अब बहुत सयानी हो गयी है। मानो हल्दी-उबटन लगाकर उसने हाथ पीले कर लिए हैं। वह ब्याह के मण्डप में आयी है।
4. 'धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने' में कवि ने मायके आयी हुई बेटी का बिम्ब निर्मित किया है। कवि कह रहा है कि चमकीली धूप निकली हुई है। ऐसा लगता है जैसे कोई बेटी ससुराल से मायके आयी है। वह चाँदी की चमकीली साड़ी पहने हुए है और अपने में मग्न है। फिर लगता है कि वह चमकीली धूप फूलों से लदी सरसों की फसल से लिपट गयी है। सरसों से वह ऐसे लिपट गयी है मानो दोनों हम-उम्र पुरानी सखियाँ हों।

बोध प्रश्न-2

- i. ख
- ii. क
- iii. ख
- iv. घ
- v. ग
- vi. ख
- vii. घ
- viii. क
- ix. घ
- x. ग
- xi. ग
- xii. घ
- xiii. घ
- xiv. ग

13.4 उपयोगी पुस्तकें

1. प्रतिनिधि कविताएँ : केदारनाथ अग्रवाल, संपादक – अशोक त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. परम्परा का मूल्यांकन – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. केदारनाथ अग्रवाल : कविता का लोक आलोक, संपादक – संतोष भदौरिया



ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY